गायत्री मंत्र के **धी** अक्षर की व्याख्या

सर्वतोमुखी उन्नति

श्रीराम शर्मा आचार्य

सर्वतोमुखी उन्नति

गायत्री मंत्र का चौदहवाँ अक्षर 'धी' जीवन की सर्वतोमुखी उन्नति की शिक्षा देता है–

धीरस्तुष्टो भवेन्नैव ह्येकस्यां हि समुन्नतौ ।
कृयतामुन्नति स्तेन सर्वास्वाशस्तु जीवने ।।

अर्थात्–"विज्ञ मनुष्य को एक ही प्रकार की उन्नति में संतुष्ट नहीं रहना चाहिए वरन् सभी दिशाओं में उन्नति करनी चाहिए ।"

जैसे शरीर के सभी अंगों का पुष्ट होना आवश्यक होता है, वैसे ही जीवन के सभी विभागों में विकास होना वास्तविक उन्नति का लक्षण है । यदि हाथ खूब मजबूत हो जायें और पैर बिल्कुल दुबले–पतले बने रहें, तो यह विषमता बहुत बुरी जान पड़ेगी । इसी प्रकार कोई आदमी केवल धनी, केवल विद्वान, केवल पहलवान बन जाय तो यह उन्नति विशेष हितकारी नहीं समझी जा सकती । वह पहलवान किस काम का जो दाने–दाने को मुँहताज हो, वह विद्वान किस काम का जो रोगों से ग्रस्त हो, वह धनी किस काम का जिसके पास न विद्या है न स्वास्थ्य । वही मनुष्य सफल कहा जा सकता है जो अपने स्वास्थ्य को उत्तम बनावे, सुशिक्षा द्वारा बुद्धि का विकास करे, जीवन–निर्वाह के लिए आजीविका का उचित प्रबन्ध करे और समाज में प्रतिष्ठा तथा विश्वास का पात्र समझा जाय ।

उन्नति करना ही जीवन का मूल मंत्र है

आगे बढ़ना, निरन्तर ऊपर उठने की चेष्टा करते रहना एक नैसर्गिक नियम है । प्रकृति का हर एक परमाणु आगे बढ़ने के लिए हलचलें कर रहा है । सूर्य को देखिए, चन्द्रमा को देखिए, नक्षत्रों को देखिए, सभी अग्रसर हो रहे हैं । नदियाँ दौड़ रही हैं, वायु वह रही है, पौधे ऊपर उठ रहे हैं । प्रकृति के परमाणुओं का अन्वेषण करने वाले वैज्ञानिकों का कहना है कि प्रत्येक पदार्थ का सबसे छोटा विद्युत घटक (इलेक्ट्रोन) भी प्रति सैकिण्ड सैकड़ों मील की चाल से घूमता हुआ आगे बढ़ रहा है ।

जब प्रकृति के जड़ दिखाई पड़ने वाले पदार्थ दिन–रात अग्रसर

होने में तल्लीन हैं, तो चैतन्य जीव का क्या कहना ? प्रत्येक जन्म में बढ़ता जाता है । निरन्तर उन्नति करते रहना उसका ईश्वर प्रदत्त नियम है । उन्नति से सतुष्ट होने का, आगे बढ़ने की गति को रोक देने का तो प्रश्न ही नहीं उठता । मनुष्य को तो अपनी संपूर्ण अपूर्णताओं से उठ कर इतना उन्नत बनना है जितना उसका पिता–ईश्वर है । जब तक जीव ब्राह्मी–स्थिति को प्राप्त नहीं कर लेता तब तक उसकी यात्रा समाप्त नहीं हो सकती । मामूली–सी उन्नति कर लेने पर लोग कहने लगते हैं कि अब इतना मिल गया, संतोष करना चाहिए । ऐसे मनुष्य मानव–जीवन के वास्तविक महत्व से अनजान हैं । हमारी उन्नति का सर्वतोमुखी क्षेत्र इतना विशाल है कि उसमें एक जीवन क्या, अनेक जीवनों तक भी निरन्तर अग्रसर होते रहने की गुन्जायश है ।

बराबर आगे बढ़ते रहने के लिए, बराबर नई शक्ति प्राप्त करते रहना आवश्यक है । आपकी उन्नति का क्रम कभी भी रुकना न चाहिए । निरंतर कदम आगे बढ़ाये चलना है और महानता को बूँद–बूँद इकट्ठी करके अपनी लघुता का खाली घड़ा पूर्ण करना है । उस कर्महीन मनुष्य का अनुकरण करने से आपका काम न चलेगा जो पेट भरते ही हाथ–पैर फैलाकर सो जाता है और जब भूख बेचैन करती है, तब करवट बदलता और कुड़कुड़ाता है । छोटी चींटी को देखिए, वह भविष्य की चिन्ता करती है, आगे के लिए अपने बिल में दाने जमा करती है जिससे जीवन संघर्ष में अधिक दृढ़तापूर्वक खड़ी रहे, दस दिन बाद पानी बरसने के कारण बिल से बाहर निकलने का अवसर न मिले तो भी जीवित रह सके । छोटी मधुमक्खी भविष्य की चिन्ता में आज का कार्यक्रम निर्धारित करती है । आज की जरूरत पूरी करके चुप बैठ रहना उचित नहीं । इस जन्म और अगले जन्म में आपको निरन्तर उन्नति पथ पर चलना है, तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि यात्रा में बल देते रहने योग्य भोजन की व्यवस्था का ध्यान रखा जाय । इस समय आप जितना बल संचय कर रहे हैं वह आगे चलकर बहुत लाभदायक सिद्ध होगा । उसकी क्षमता से भविष्य का यात्रा–क्रम अधिक तेजी और सरलता से चलता रहेगा ।

योग साधना के फलस्वरूप सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं । अष्ट–सिद्धि, नव–निद्धि के लिए लालायित होकर अनेक साधक कठोर साधनाएँ करते

हैं, विजयी बनने के लिए मृत्यु की छाया में रणक्षेत्र की ओर कदम बढ़ाते हैं, स्वर्ग लाभ के लिए दुर्गम वन-पर्वतों की यात्रा करते हैं, धनी बनने के लिए एड़ी से चोटी तक पसीना बहाते हैं, बलवान बनने के लिए थककर चूर-चूर करने वाले व्यायाम में प्रवृत्त होते हैं, विद्वान बनने के लिए रात-रात भर जागकर अध्ययन करते हैं । यह उदाहरण बताते हैं कि उन्नत बनने की आवश्यकता को हमारी अन्तःचेतना विशेष महत्व देती है और उस आवश्यकता को पूरा करने के लिए हम बड़ी से बड़ी जोखिम उठाने को, कठिन से कठिन प्रयत्न करने को तत्पर हो जाते हैं । नकली आवश्यकता और असली आवश्यकता की पहचान यह है कि नकल के लिए, संदिग्ध बात के लिए त्याग करने की तत्परता नहीं होती, असली आवश्यकता के लिए मनुष्य कष्ट सहने और कुर्बानी करने को तैयार रहता है । एक आदमी सिनेमा का शौकीन है उससे कहा जाय कि एक खेल के बदले में तुम्हें अपनी उँगली कटवानी पड़ेगी तो वह ऐसा खेल देखने से मना कर देगा क्योंकि खेल देखने की आवश्यकता नकली है, उसके लिए इतना कष्ट सहन नहीं किया जा सकता । परन्तु यदि स्त्री, पुत्र आदि कोई प्रियजन अग्निकाण्ड में फँस गये हों तो उन्हें बचाने के लिए जलती हुई अग्नि शिखाओं में कूदा जा सकता है । फिर चाहे भले ही उसमें झुलस कर अपना भी शरीर चला जावे । सिनेमा का खेल देखने की आवश्यकता और प्रियजनों की जीवन रक्षा की आवश्यकता में कौन असली है और कौन नकली उसकी पहचान उसके लिए त्याग करने की मात्रा के अनुसार जानी जा सकती है । हम देखते हैं कि उन्नति करने की लालसा मानव स्वभाव में इतनी तीव्र है कि वह उसके लिए कष्ट सहता है और जोखिम उठाता है । यह भूख असली है । असली आवश्यकता में इतना आकर्षण होता है कि उसके लिए तीव्र शक्ति से प्रयत्न करने को बाध्य होना पड़ता है । मौज में पड़े रहना किसी को बुरा नहीं लगता, पर उन्नति की ईश्वर-दत्त आकांक्षा इतनी तीव्र है कि उसके लिए मौज छोड़कर लोग कष्ट सहने को तत्पर हो जाते हैं ।

देखा जाता है कि जो लोग उन्नतिशील स्वभाव के होते हैं उन्हें कहीं न कहीं से आगे बढ़ाने वाली सहायताएँ प्राप्त होती रहती हैं । कभी-कभी तो अचानक ऐसी मदद मिल जाती है जिसकी पहले कुछ भी

आशा नहीं थी । छोटे–छोटे आदमी बड़े–बड़े काम कर डालते हैं, उन्हें अनायास ऐसे अवसर मिल जाते हैं जिससे बहुत बड़ी उन्नति का रास्ता खुल जाता है । साधारण बुद्धि के लोग उन्हें देखकर ऐसा कहा करते हैं कि अमुक व्यक्ति का भाग्योदय हुआ, उसके भाग्य ने अचानक ऐसे कारण उपस्थित कर दिये जिससे वह तरक्की की ओर बढ़ गया । हम इसे ईश्वर की कृपा कहते हैं । जो व्यक्ति आगे बढ़ने की तीव्र इच्छा करते हैं उन्नति के लिए जो जांफिसानी के साथ प्रयत्नशील हैं, उसके प्रशंसनीय उद्योग को देखकर ईश्वर प्रसन्न होता है, अपना सच्चा आज्ञापालक समझता है और उसे प्यार करता है । जिस पर उस परमपिता का विशेष स्नेह है उसे यदि वह कुछ विशेष सहायता दे देता है तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है । एक प्रसिद्ध कहावत है–"ईश्वर उसकी मदद करता है, जो अपनी मदद आप करता है ।" उन्नतिशील स्वभाव के लोगों को, उनकी उचित प्रवृत्ति में सहायता करने के लिए, परमपिता परमात्मा ऐसे साधन उपस्थित कर देता है जिस से उसकी यात्रा सरल हो जाती है । अचानक, अनिश्चित एवं अज्ञात सहायताओं का मिल जाना इसी प्रकार संभव होता है ।

आप 'उन्नति करना' अपने जीवन का मूल–मंत्र बना लीजिए, ज्ञान को अधिक बढ़ाइए, शरीर को स्वस्थ बलवान और सुन्दर बनाने की दिशा में अधिक प्रगति करते जाइए, प्रतिष्ठावान हूजिए, ऊँचे पद पर चढ़ने का उद्योग कीजिए, मित्र और स्नेहियों की संख्या बढ़ाइए, पुण्य संचय करिए, सद्‌गुणों से परिपूर्ण बनिए, आत्म–बल बढ़ाइए, बुद्धि को तीव्र करिए, अनुभव बढ़ाइए, विवेक को जागृत होने दीजिए । बढ़ना आगे बढ़ना और आगे बढ़ना यात्री का यही कार्यक्रम होना चाहिए ।

अपने को असमर्थ, अशक्त, एवं असहाय मत समझिए, ऐसे विचारों का परित्याग कर दीजिए कि साधनों के अभाव में हम किस प्रकार आगे बढ़ सकेंगे । स्मरण रखिये, शक्ति का स्रोत साधनों में नहीं, भावना में है । यदि आपकी आकांक्षाएँ आगे बढ़ने के लिए व्यग्र हो रही हैं, उन्नति करने की तीव्र इच्छाएँ बलवती हो रही हैं, तो विश्वास रखिए साधन आप को प्राप्त होकर रहेंगे । ईश्वर उन लोगों की पीठ पर अपना वरद हस्त रखता है जो हिम्मत के साथ आगे कदम बढ़ाते हैं ।

उन्नति के लिए आकांक्षा कीजिए

परमात्मा ने सभी हो एक से शारीरिक अंग-प्रत्यंग और इन्द्रियाँ दी हैं । यदि मनुष्य इनका उचित रूप से प्रयोग करे तो कोई कारण नहीं कि जीवन क्षेत्र में अभीष्ट सफलता प्राप्त न हो सके । मनुष्य जिस प्रकार की इच्छा और आकांक्षा करता है वैसी ही परिस्थितियाँ उसके निकट एकत्रित होने लगती हैं । आकांक्षा एक प्रकार की चुम्बक शक्ति है जिसके आकर्षण से अनुकूल परिस्थितियाँ खिंची चली आती हैं । जहाँ गड्ढा होता है, वहाँ चारों ओर से वर्षा का पानी सिमट आता है और वह गड्ढा भर जाता है, किन्तु जहाँ ऊँचा टीला होता है वहाँ भारी वर्षा होने पर भी पानी नहीं ठहरता । आकांक्षा एक प्रकार का गड्ढा है जहाँ सब ओर से अनुकूल स्थितियाँ खिंच-खिंच कर एकत्रित होने लगती हैं, जहाँ इच्छा नहीं वहाँ कितने ही अनुकूल साधन मौजूद हों पर कोई महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त नहीं होती ।

देखा गया है कि अमीरों के लड़के अक्सर नालायक निकलते हैं और गरीबों के लड़के बड़ी-बड़ी उन्नतियाँ कर जाते हैं । संसार के इतिहास को उलट जाइए अधिकांश महापुरुष गरीबों के घर में पैदा हुए व्यक्ति ही मिलेंगे । कारण यह है कि ऐश-आराम की काफी सामग्री सुगम्तापूर्वक मिल जाने के कारण उनकी रुचि सुखोपभोग में लग जाती है । किसी दिशा में महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त करने की तीव्र अभिलाषा उनमें नहीं होती । अभिलाषा के बिना पौरुष जागृत नहीं होता और पुरुषार्थ के बिना कोई महत्वपूर्ण सफलता कठिन है । गरीबों के लड़के अभावग्रस्त स्थिति में पैदा होते हैं, अपनी हीनता और दूसरों की उन्नति देखकर अन्तःकरण में एक आघात लगता है, इस आघात के कारण उनमें एक हलचल, बेचैनी, उत्पन्न होती है, उस बेचैनी को शान्त करने के लिए वे उन्नत अवस्था में पहुँचने की आकांक्षा करते हैं । यह आकांक्षा ही उस मार्ग पर ले दौड़ती है जिस पर चलते हुए महत्वपूर्ण सफलताएँ प्राप्त हुआ करती हैं ।

उपरोक्त पंक्तियों में हमारा अभिप्राय गरीबी या अमीरी के साथ उन्नति या जीवन की असफलता या संबंध जोड़ने का नहीं है । हमारा

अभिप्राय केवल यह बताने का है कि जहाँ जिस वातावरण में इच्छा की, आकांक्षा की कमी रहेगी वहाँ विभूतियाँ प्राप्त न हो सकेंगी । जहाँ इच्छा होगी, अभिरुचि होगी, वहाँ पैसे का, साधनों का, सहयोग का अभाव भले ही हो पर धीरे-धीरे अनुकूल वातावरण उत्पन्न हो जायगा और गौरवास्पद सिद्धि मिलकर रहेगी । यदि सम्पन्न घर के व्यक्ति को किसी बात की उत्कट अभिलाषा हो तब तो सोना और सुगंध का संयोग ही समझिए । गरीबों को उन्नति के लिए जिन साधनों को जुटाने में पर्याप्त परिश्रम करना पड़ता है वे तो उन्हें अनायास ही प्राप्त हुए होते हैं । इसलिए उनके लिए तो आगे बढ़ने में और भी अधिक आसानी होनी चाहिए ।

मन में जो इच्छा प्रधान रूप से काम करती है, उसे पूरा करने के लिए शरीर की समस्त शक्तियाँ काम करने लगती हैं । निर्णय शक्ति, निरीक्षण शक्ति, अन्वेषण शक्ति, आकर्षण शक्ति, चिन्तन शक्ति, कल्पना शक्ति आदि मस्तिष्क की अनेकों शक्तियाँ उसी दिशा में अपना प्रयत्न आरम्भ कर देती हैं । यह शक्तियाँ जब सुप्त अवस्था में पड़ी होती हैं या विभिन्न दिशाओं में बिखरी रहती हैं तब मनुष्य की स्थिति अस्त-व्यस्त एवं नगण्य होती है, परन्तु जब शक्तियाँ एक ही दिशा में कार्य करना आरंभ कर देती हैं तो एक जीवित चुम्बकत्व तैयार हो जाता है । जैसे चुम्बक पत्थर को कूड़े-कचरे में भी फिराया जाय तो धातुओं के जो टुकड़े इधर-उधर बिखर रहे होंगे वे सब उससे चिपक जावेंगे । इस प्रकार विशिष्ट आकांक्षाएँ मन में धारण किए हुए व्यक्ति अपनी आकर्षण शक्ति से उन सब तत्त्वों को ढूँढ़ता और प्राप्त करता रहता है, जो लघु कणों के रूप में जहाँ-तहाँ बिखरे पड़े होते हैं ।

जब किसी बात की तीव्र इच्छा होती है तो उसे पूर्ण करने के लिए साधनों की तलाश आरंभ होती है, निदान कोई न कोई उपाय निकल ही आते हैं । आवश्यकता आविष्कार की जननी है । जहाँ चाह होती है, वहाँ राह निकल आती है । अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति के लिए लोग आकाश में से राह बना लेते हैं, अथाह समुद्र में डुबकी लगाकर उसकी तली में रखे हुए मोती ढूँढ़ लाते हैं, रेत के जर्रों को ढूँढ़ कर सोने-चाँदी की खानें मालूम करते हैं, कोयले के पर्वतों के तोड़कर हीरों का पता लगाते हैं । तलाश वास्तव में बड़ी प्रेरक शक्ति है, मनुष्य ने एवरेस्ट की

चोटी, समुद्र की तली, ध्रुव प्रदेशों की भूमि और आकाश की दुर्गमता पार कर ली है । प्रकृति के गर्भ में छिपे हुए अनेकों रहस्यों को ढूँढ़ कर एक से एक अद्‌भुत सिद्धि के पथ पर दृढ़तापूर्वक अग्रसर होता है, तब वह एक शक्तिशाली भीमकाय युद्ध टैंक का रूप धारण कर लेता है । खाई–खन्दकों को पार करता हुआ, रास्ते के पेड़–पौधों की बाधाओं को तोड़ता–मरोड़ता हुआ अभीष्ट लक्ष की ओर द्रुतगति से बढ़ता जाता है ।

जीवन को ऊँचा उठाने के इच्छुकों के लिए सब से प्रथम मार्ग यह है कि अपनी आकांक्षा को जागृत करें । अन्य मनस्कता, उदासीनता और मुर्दादिली को छोड़कर अपने मनःक्षेत्र को सतेज करें । आप विचार कीजिए कि (१) आपके जीवन में किन वस्तुओं का अभाव है ? (२) उस अभाव के कारण आपको क्या–क्या कष्ट सहने पड़ते हैं ? (३) आपको किन वस्तुओं की आवश्यकता है ? (४) उन वस्तुओं के उपलब्ध हो जाने पर आप कितने संतोष, सुख और आनन्द का रसास्वादन कर सकते हैं ? इन चारों प्रश्नों पर बार–बार विचार कीजिए और जिन पदार्थों की आवश्यकता अनुभव करें उन्हें प्राप्त करने के लिए तीव्र इच्छा कीजिए ।

आपकी इच्छा, प्रेरक इच्छा होनी चाहिए । उसकी भूख भीतर से उठनी चाहिए । उसके पीछे प्राण और जीवन होना चाहिए । 'इस वस्तु को प्राप्त करके रहूँगा, चाहे कितनी ही बाधा मार्ग में क्यों न आवें ? अपने प्रयत्न निरन्तर जारी रखूँगा चाहे कितने ही निराश करने वाले अवसर क्यों न आवें ।' इस प्रकार के संकल्प की मन में गहरी सुदृढ़ स्थापना होनी चाहिए ।

जिस वस्तु को आप प्राप्त करना चाहते हैं पहले उसके संबंध में गंभीर विचार कर लीजिए, उसे प्राप्त करना किस प्रकार कैसे संभव है, उसकी संभावनाओं पर तर्क–वितर्क कीजिए, कल्पना की स्वप्निल उड़ान से नीचे उतर कर व्यवहारिक क्षेत्र में दृष्टिपात कीजिए कि कहीं आप कोई 'चन्द्र खिलौना' तो नहीं चाह रहे हैं । आरम्भ में छोटी–छोटी सफलताएँ प्राप्त करने को छोटे–छोटे कार्य हाथ में लीजिए । बहुत बड़े मुद्‌दतों में पूरे होने वाले कार्यों को आरम्भिक लक्ष्य बना लेना ठीक नहीं है । अन्तिम लक्ष बहुत बड़ा हो सकता है, पर आरम्भिक सफलता के लिए छोटे–छोटे विराम रखने चाहिए । जैसे आप धुरन्धर विद्वान बनना

चाहते हैं तो पहले अमुक छोटी परीक्षा पास करने का लक्ष स्थिर कीजिए । उसमें सफल होने के बाद आगे की मंजिलें नियत करते चलिए और उन्हें तय करते जाइए । इस प्रकार एक-एक करके छोटी मंजिलों को पार करते चलने से मनुष्य का साहस, बल, आत्म-विश्वास और अनुभव बढ़ता चलता है और वह धीरे-धीरे अन्तिम लक्ष तक पहुँच जाता है ।

उन्नति के मार्ग में कठिनाइयाँ

सफलता का मार्ग सुगम नहीं होता । उसमें पग-पग पर विघ्न-बाधाओं का सामना करना पड़ता है । ऐसा कोई भी महत्वपूर्ण कार्य नहीं जिसमें कष्ट और कठिनाइयाँ न उठानी पड़ें । ऐसी एक भी सफलता नहीं है जो कठिनाइयों से संघर्ष किए बिना ही प्राप्त हो जाती हो । जीवन के महत्वपूर्ण मार्ग विघ्न-बाधाओं से सदा ही भरे रहते हैं । यदि परमात्मा ने सफलता का कठिनाई के साथ गठबन्धन न किया होता, उसे सर्व सुलभ बना दिया होता तो मनुष्य जाति का वह सबसे बड़ा दुर्भाग्य होता । तब सरलता से मिली हुई सफलता बिलकुल नीरस एवं उपेक्षणीय हो जाती । जो वस्तु जितनी कठिनता से, जितना खर्च करके मिलती है, वह उतनी ही आनन्ददायक होती है । कोई शाक या फल जिन दिनों सस्ता और काफी संख्या में मिलता है उन दिनों उसकी कोई पूछ नहीं होती, पर जिन दिनों वह दुर्लभ होता है उन दिनों अमीर लोग उसकी खोज कराके मँहगे दाम पर खरीदते हैं । स्वर्ण की महत्ता इसलिए है कि यह कम मिलता है पर यदि कोयले की तरह सोने की खानें निकल पड़ें तो उसे भी लोग वैसी ही लापरवाही से देखेंगे जैसे आज लोहे आदि सस्ती वस्तुओं को देखा जाता है ।

दुर्लभता और दुष्प्राप्यता से आनन्द का घनिष्ठ संबंध है । जब प्रेमी और प्रेमिका दूर-दूर रहते हैं तो एक-दूसरे को चन्द्र-चकोर की भाँति याद किया करते हैं, परन्तु जब सदा ही एक जगह रहना होता है तो दाल में नमक कम पड़ने या सिन्दूर की बिन्दी लाने में भूल हो जाने जैसी छोटी बातों पर कलह होने लगती है । जो वस्तुएँ दुर्लभ हैं, सर्व साधारण को आसानी से नहीं मिलतीं उन्हें पा लेना ही सफलता कहते हैं । जिन कार्यों की सफलता सर्व सुलभ है, वैसे कार्य तो सब लोग सदा करते

ही रहते हैं । उनके लिए न कोई पुस्तक पढ़ने की आवश्यकता पड़ती है और न लेखक को लिखने की । यदि महत्वपूर्ण सफलताओं को प्राप्त करने में कुछ बाधा न होती तो वे महत्वपूर्ण न रहतीं और न उनमें कुछ रस आता । कोई रस और कोई विशेषता, न रहने पर यह संसार बड़ा ही नीरस एवं कुरूप हो जाता, लोगों को जीवन काटना एक भार की भाँति अप्रिय कार्य प्रतीत होने लगता ।

कठिनाइयों के न रहने पर एक और हानि होती है कि मनुष्य की क्रियाशीलता, कुशलता एवं चैतन्यता नष्ट हो जाती । ठोकरें खा-खाकर अनुभव एकत्र किया जाता है । घिसने और पिसने से योग्यता बढ़ती है । कष्ट की चोट सहकर मनुष्य दृढ़, बलवान और साहसी बनता है । मुसीबत की अग्नि में तपाये जाने पर बहुत-सी कमजोरियाँ जल जाती हैं और मनुष्य खरे सोने की तरह चमकने लगता है । हथियार की धार पत्थर पर रगड़ने से तेज होती है । खराद पर चढ़ाने से हीरे में चमक आती है । घात-प्रतिघातों की ठोकर खाकर रबड़ की गेंद की तरह अन्तःचेतना में उछाल आता है और वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचने की गतिविधि आरंभ कर देती है । मनुष्य भी ऐसे ही तत्वों से बना हुआ है कि यदि उसे ठोकर न लगे, कठिनाई से संघर्ष न करना पड़े तो उसकी सुप्त शक्तियाँ जागृत न हो सकेंगी और वह जहाँ का तहाँ पड़ा दिन काटता रहेगा ।

सफलता में आनन्द कायम रखने और शक्तियों के चैतन्य होकर विकास के मार्ग पर प्रवृत्त होने के लिए जीवन में कष्ट और कठिनाइयों का रहना बड़ा ही आवश्यक है । इतिहास में जिन महापुरुषों का वर्णन है, उनमें से हर एक के पीछे कष्टों, दुर्दम कठिनाइयों में पड़ने का विस्तृत वृत्तान्त है । उसी के कारण वे महापुरुष बने हैं । यदि ईसामसीह के जीवन में से उनकी तपश्चर्या और क्रूस पर चढ़ना, इन दो बातों को निकाल दिया जाये तो वह एक साधारण धर्मोपदेशक मात्र रह जायेंगे । राणा प्रताप, शिवाजी, बन्दा वैरागी, हकीकत राय, शिव, दधीचि, हरिश्चन्द्र, प्रहलाद, लेनिन, गान्धी, जवाहर आदि को परम आदरणीय महापुरुष बनाने का महत्त्व उनकी कष्ट सहिष्णुता को है, यदि उन्होंने पग-पग पर कष्ट सहना स्वीकार न किया होता, यदि उन्होंने दुःखों और

कठिनाइयों को न अपनाया होता तो वे साधारण श्रेणी के भले मनुष्य मात्र रह जाते, महापुरुष का पद उन्हें प्राप्त न हुआ होता ।

आकांक्षा, जागरूकता और परिश्रमशीलता से बड़े-बड़े कष्ट साध्य कार्य पूरे हो जाते हैं, तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि वे शीघ्र ही स्वल्पकाल में और बिना कोई खतरा उठाये सफल हो जाते हैं । परमेश्वर बार-बार परीक्षा लेकर मनुष्य के अधिकारी होने न होने की जाँच किया करता है । सफलता के लिए भी मनुष्य को अनेकों खतरों, कष्टों और निराशाजनक अवसरों की परीक्षाएँ देनी होती हैं । जो उत्तीर्ण होते हैं वे ही आगे बढ़ते हैं, मनोवांछित सफलता का रसास्वादन करते हैं । जो इन परीक्षाओं से डर जाते हैं, उन्हें पार करने का प्रयत्न नहीं करते वे उन्नति के शिखर पर नहीं पहुँच सकते, अभीष्ट सिद्धि की महत्ता को प्राप्त नहीं कर सकते ।

सफलता की मंजिल क्रमशः और धीरे-धीरे पार की जाती है, कठिनाइयों से लड़ता, मरता, चोटें और ठोकरें खाता हुआ ही कोई मनुष्य सफल मनोरथ होता है । अनेक बार दूसरे के द्वारा विघ्न डाले जाते हैं, कई बार दैवी प्रकोप के कारण अनायास ही कुछ अड़चनें आ जाती हैं, कई बार मनुष्य स्वयं भूल कर बैठता है । अपनी असावधानी या भूल के कारण असफल होना पड़ता है । अपनी भूलों को सुधारने के लिए प्रयत्न किया जाता है, पर पुराने अभ्यास के कारण वे दोष फिर उमड़ पड़ते हैं और बना बनाया काम बिगाड़ देते हैं । कई बार प्रयत्न करते हुए भी जब अपने-अपने स्वभाव या अभ्यास को सुधारने में सफलता नहीं मिलती तो बड़ी निराशा होती है और खिन्न होकर मनुष्य अपने प्रयास को ही बन्द कर देता है ।

अपने स्वभाव के लिए बदलने का पूरी शक्ति से प्रयत्न तो करना चाहिए, पर यह आशा न करनी चाहिए कि इस दिशा में दो-चार दिन में ही पूर्ण सुधार हो जायगा । स्वभाव का अभ्यास धीरे-धीरे बहुत दिन में पड़ता है, किसी दोष से पूर्णतया छुटकारा पाने या किसी अच्छी आदत को डालने में बहुत समय तक प्रयत्न करने की आवश्यकता होती है । यह प्रयत्न धैर्य एवं दृढ़ता के साथ, उत्साहित एवं आशान्वित होकर करना चाहिए और जब भूलें हों तो अपने को अधिक सावधान एवं जागरूक

करते हुए आगे से अधिक सावधानी बरतने का निश्चय करना चाहिए । रस्सी की रगड़ से जब पत्थर जैसा कठोर पदार्थ घिस जाता है तो कोई कारण नहीं कि हम अपने दोषों और त्रुटियों को परिवर्तित या नष्ट न कर सकें ।

उन्नति के मार्ग में कई बार आकस्मिक परिस्थितियाँ आगे आ जाती हैं और बने काम को बिगाड़ देती हैं । सफलता की मंजिल पूरी होने के नजदीक होती है कि यकायक कोई ऐसा वज्र प्रहार हो जाता है कि सारे मनसूबे धूल में मिल जाते हैं । पूरा प्रयत्न करने, पूरी सावधानी बरतने पर भी इस प्रकार के संकट सामने आ जाते हैं, जो बिल्कुल ही आकस्मिक होते हैं । पहिले से उनकी कल्पना भी नहीं रहती । मृत्यु, विछोह, चोरी अग्निकाण्ड, रोग, युद्ध, तूफान, वर्षा, शत्रु का प्रहार, षड्यन्त्र, राजदण्ड, घाटा, वस्तुओं की टूट-फूट, विश्वासघात, अपमान, ठगा जाना, दुर्घटना, भूल आदि कारणों से ऐसी भयंकर परिस्थितियाँ समाने आ खड़ी होती हैं, जिनकी पहले से कोई संभावना ही न थी । ऐसी विषम स्थिति में होकर गुजरने का जिन्हें साहस, अनुभव या अभ्यास नहीं होता, वे यकायक घबरा जाते हैं, किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाते हैं, उन्हें सूझ नहीं पड़ता कि क्या करें क्या न करें ।

यह स्थिति मनुष्य जैसे विवेकशील प्राणी के गौरव को गिराने वाली है । विपरीत परिस्थितियाँ मनसूबों को धूल में मिला देने की क्षमता रखती हैं, यह ठीक है, पर यह भी ठीक है कि सदा ही हर बार किन्हीं प्रयत्नों को कोई भी प्रकृति का प्रकोप नहीं रोक सकता । हरी घास को ग्रीष्म की चिलचिलाती धूप जला डालती है, उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि घास को धूप ने सर्वथा परास्त कर दिया, परन्तु यह स्थिति सदा नहीं रहती, क्योंकि विध्वंसक तत्वों की सत्ता बहुत ही क्षणिक एवं स्वल्पजीवी हुआ करती है । ग्रीष्म समाप्त होते ही वर्षा आती है और जली-भुनी घास फिर सजीव एवं हरी-भरी हो जाती है । ग्रीष्म चला गया, घास को एक बार उसने परास्त कर दिया, परन्तु इतने मात्र से ही यह नहीं समझ लेना चाहिए कि धूप में घास को नष्ट कर डालने की, उसके सुरम्य जीवन को नष्ट कर डालने की शक्ति है । ईश्वर ने जिसे जीवन दिया है, ईश्वर ने जिसे आनन्दमय बनाया है, उसके जीवन और

आनन्द को कोई भी विक्षेप छीन नहीं सकता, नष्ट नहीं कर सकता ।

प्रकृति के नियमों में एक रहस्य बड़ा ही विचित्र और अद्‌भुत है । वह यह है कि हर एक विपत्ति के बाद उसकी विरोधी सुविधा प्राप्त होती है । जब मनुष्य बीमारी से उठता है तो बड़े जोरों की भूख लगती है, निरोगिता–शक्ति बड़ी तीव्रता से जागृत होती है और जितनी थकान बीमारी के दिनों में आई थी वह थोड़े दिनों में बड़ी तेजी के साथ पूरी हो जाती है । ग्रीष्म की जलन को चुनौती देती हुई वर्षा की मेघ मालाएँ आती हैं और धरती को शीतल, शान्तिमय हरियाली से ढँक देती हैं । हाथ–पैरों को अकड़ा देने वाली ठण्ड जब उग्र रूप से अपना जौहर दिखा चुकी होती है, तो उसकी प्रतिक्रिया से एक ऐसा मौसम आता है जिसके द्वारा शीत सर्वथा नष्ट हो जाता है । रात्रि के बाद दिन का आना सुनिश्चित है । अन्धकार के बाद प्रकाश का दर्शन भी अवश्य ही होता है । मृत्यु के बाद जन्म भी होता ही है । रोग, घाटा, शोक आदि की विपत्तियाँ चिरस्थाई हैं, वे आँधी की तरह आती हैं और तूफान की तरह चली जाती हैं । उनके चले जाने के पश्चात् एक दैवी प्रतिक्रिया होती है जिसके द्वारा उस क्षति की पूर्ति के लिए कोई ऐसा विचित्र मार्ग निकल आता है, जिससे बड़ी तेजी से उस क्षति की किसी न किसी प्रकार पूर्ति हो जाती है, जो आपत्ति के कारण हुई थी ।

आकस्मिक विपत्ति का शिर पर आ पड़ना मनुष्य के लिए सचमुच बड़ा दुःखदायी है । इससे उसकी बड़ी हानि होती है किन्तु उस विपत्ति की हानि से अनेकों गुनी हानि करने वाला एक और कारण है वह है "विपत्ति की घबराहट" । विपत्ति कही जाने वाली मूल घटना, चाहे वह कैसी ही बड़ी क्यों न हो किसी का अत्यधिक अनिष्ट नहीं कर सकती, वह अधिक समय ठहरती भी नहीं, अपना एक प्रहार करके चली जाती है । परन्तु 'विपत्ति की घबराहट" ऐसी दुष्टा, पिशाचिनी है कि वह जिसके पीछे पड़ती है उसके गले से खून की प्यासी जोंक की तरह चिपक जाती है और जब तक उस मनुष्य को पूर्णतया नि–सत्व नहीं कर देती तब तक उसका पीछा नहीं छोड़ती । विपत्ति के पश्चात् आने वाले अनेकानेक जंजाल इस घबराहट के कारण ही आते हैं । शारीरिक, मानसिक और सामाजिक सुस्थिति का सत्यानाश करके वह मनुष्य की

जीवनी शक्ति को चूस जाती हैं ।

आकस्मिक विपत्तियों से मनुष्य नहीं बच सकता । राम, कृष्ण, हरिश्चन्द्र, नल, पाण्डव, प्रताप, शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह जैसी आत्माओं को विपत्ति ने नहीं छोड़ा तो अन्य कोई उसकी चपेटों से बच जायगा ऐसी आशा नहीं करनी चाहिए । इस सृष्टि का विधि–विधान कुछ ऐसा ही है कि सम्पत्ति और विपत्ति का, लाभ और हानि का चक्र हर एक के ऊपर चलता रहता है । प्रारब्ध कर्मों का भोग भुगतने के लिए, ठोकर देकर चेताने के लिए, क्रिया शक्ति, मजबूती, दृढ़ता और अनुभवशीलता की वृद्धि के लिए या किसी अन्य प्रयोजन के लिए विपत्तियाँ आती हैं । इसका ठीक–ठीक कारण तो परमात्मा ही जानता है पर इतना सुनिश्चित है कि विपत्तियों का प्रकोप विभिन्न मार्गों से समय–समय पर हर एक के ऊपर होता रहता है । अप्रिय, अरुचिकर एवं असंतुष्ट करने वाली परिस्थितियाँ न्यूनाधिक मात्रा में हर किसी के सामने आती हैं । इनसे कोई भी पूर्णतया सुरक्षित नहीं रह सकता, पूरी तरह नहीं बच सकता ।

परन्तु यह बात अवश्य है कि यदि हम चाहें तो उन विपत्तियों के पीछे आने वाले बड़े भयंकर और सत्यानाशी आपत्ति जंजालों से आसानी के साथ बचे रह सकते हैं और आसानी से उस आकस्मिक विपत्ति की थोड़े ही समय में क्षति–पूर्ति कर सकते हैं । कठिनाई से लड़ने और उसे परास्त करके अपने पुरुषार्थ का परिचय देना, यह मनोवृत्ति ही सच्चे वीर पुरुषों को शोभा देती है । योद्धा पुरुष उस तलवार को चुनौती देते रहते हैं, जिससे एक ही झटके में सिर धड़ से अलग हो सकता है । बहादुरों को किसी प्रकार का डर नहीं होता, उन्हें अपना भविष्य सदा ही सुनहरा दिखाई देता है । 'हतो वा प्राप्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम' की भावना उनके मन में सदा ही उत्साह एवं आशा की ज्योति प्रदीप्त रखती है । बुरे समय के तीन सच्चे साथी होते हैं–धैर्य, साहस और प्रयत्न । जो इन तीनों को साथ रखता है, उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता । जिसने कठिन समय में अपने मानसिक सन्तुलन को कायम रखने का महत्व समझ लिया है, जो बुरी घड़ी में भी दृढ़ रहता है, अन्धकार में रहकर भी जो प्रकाश पूर्ण प्रभात की आशा लगाये रहता है, वह वीर

पुरुष सहज में ही दुर्गमता को पार कर जाता है । मानसिक संतुलन के कायम रहने से न तो शारीरिक स्वास्थ्य नष्ट होता है और न मानसिक गड़बड़ी पड़ती है, न तो उसके मित्र उदासीन होते हैं और न शत्रु उबलते हैं इस प्रकार स्वनिर्मित दुर्घटनाओं से वह बच जाता है । अब केवल आकस्मिक विपत्ति की क्षति पूर्ति का प्रश्न रह जाता है । अत्यधिक उग्र आकांक्षा और पूर्व अनुभव के आधार पर वह अपनी विवेक बुद्धि से ऐसे साधन जुटा लेता है, ऐसे मार्ग तलाश कर लेता है कि पहली जैसी या उसके समतुल्य अन्य किसी प्रकार की सुखदायक परिस्थिति प्राप्त कर ले । जो बुरे समय में अपने साहस और धैर्य को कायम रखता है, वह भाग्यशाली वीर योद्धा जीवन भर कभी दुर्भाग्य की शिकायत नहीं कर सकता । कष्ट की घड़ी उसे ईश्वरीय कोप नहीं वरन् धैर्य, साहस और पुरुषार्थ की परीक्षा करने वाली चुनौती दिखाई पड़ती है, वह इस चुनौती को स्वीकार करने का गौरव लेने का सदा तैयार रहता है ।

दार्शनिक चुनिंग तो हांग कहा करते थे कि 'कठिनाई एक विशालकाय, भयंकर आकृति के, किन्तु कागज के बने हुए सिंह के समान है, जिसे दूर से देखने पर बड़ा डर लगता है, पर एक बार जो साहस करके उसके पास पहुँच जाता है उसे प्रतीत होता है कि वह केवल एक कागज का खिलौना मात्र था । बहुत से लोग चूहों को लड़ते देखकर डर जाते हैं, पर ऐसे भी लाखों योद्धा हैं जो दिन-रात आग उगलने वाली तोपों की छाया में सोते हैं । एक व्यक्ति को एक घटना वज्रपात के समान असह्य मालूम होती है, परन्तु दूसरे आदमी पर जब वही घटना घटित होती है, तो वह लापरवाही से कहता है 'उँह ! क्या चिन्ता है, जो होगा देखा जायगा ।" ऐसे लोगों के लिए वह दुर्घटना स्वाद परिवर्तन की एक सामान्य बात होती है । विपत्ति अपना काम करती रहती है, वे अपना काम करते रहते हैं । बादलों की छाया की भाँति बुरी घड़ी आती है और समयानुसार टल जाती है । बहादुर आदमी हर नई परिस्थिति के लिए तैयार रहता है । पिछले दिनों ऐश-आराम के साधनों का उपभोग भी वहीं करता था और अब मुश्किल से भरे, अभाव ग्रस्त दिन बिताने पड़ेंगे तो इसके लिए भी वह तैयार है । इस प्रकार का साहस रखने वाले वीर पुरुष ही इस संसार में सुखी जीवन का उपयोग

करने के अधिकारी हैं । जो भविष्य के अंधकार की दुखद कल्पनाएँ कर-कर के अभी से शिर फोड़ रहे हैं, वे एक प्रकार के नास्तिक हैं, ऐसे लोगों के लिए यह संसार दुःखमय, नरक रूप रहा है और आगे भी वैसा ही बना रहेगा ।

किसी निश्चित कार्यक्रम पर चलते हुए उस योजना को विफल कर देने वाले कारण कभी-कभी उपस्थित हो जाते हैं । किसी प्रमुख सम्बन्धी की मृत्यु, रोग, लड़ाई-झगड़े, आर्थिक हानि, विश्वासघात, दुर्घटना, बनाये हुए कार्य का बिगड़ जाना आदि जैसे किसी कारण से निश्चित कार्यक्रम बदलना पड़ सकता है, भविष्य में अधिक परिश्रम करने और अभावगग्रस्त दशा में रहने के लिए विवश होना पड़ सकता है, विछोह और वियोग की पीड़ा में जलना पड़ सकता है । ऐसी गिरी हुई स्थिति आने पर घबराना नहीं चाहिए बल्कि अपने आपको बदल लेना चाहिए । पहले जैसी स्थिति थी तब वैसी स्थिति के अनुकूल अपने कार्य होते थे, अब दूसरी स्थिति है तो उसी अनुपात से दूसरे ढंग से काम होना चाहिए ।

पहले सम्पन्न अवस्था में रहकर पीछे जो विपन्न अवस्था में पहुँचते हैं वे सोचते हैं कि लोग हमारा उपहास करेंगे । इस उपहास की शर्म से लोग बड़े दुःखी रहते हैं । वास्तव में यह अपने मन की कमजोरी मात्र है । दुनियाँ में सब लोग अपने-अपने काम में लगे हुए हैं, किसी को इतनी फुरसत नहीं है कि बहुत गम्भीरता से दूसरों का उपहास या प्रशंसा करें । लोगों को इतनी मात्र आलोचना या उपहास के भय से अपने आपको ऐसी लज्जा में डुबाये रहना, मानो कोई अपराध किया हो, मनुष्य की भारी भूल है ।

चोरी करने में, बुराई, दुष्टता, नीच कर्म, पाप या अधर्म करने में लज्जा आनी चाहिए । यह कोई लज्जा की बात नहीं कि कल दस पैसे थे आज दो रह गये, कल सम्पन्न अवस्था थी आज विपन्न हो गई । पाण्डव एक दिन राजगद्दी पर भी शोभित थे, एक दिन उन्हें मेहनत मजूरी करके अज्ञातवास में पेट भरने और दिन काटने के लिए विवश होना पड़ा । राणा प्रताप और महाराज नल का चरित्र जिन्होंने पड़ा है, वे जानते हैं कि ये प्रतापी महापुरुष समय के कुचक्र से एक बार बड़ी दीन-हीन दशा में भी रह चुके हैं । पर इसके लिए कोई विज्ञ पुरुष

उनका उपहास नहीं करता । मूर्ख और बुद्धि हीनों के उपहास का कोई मूल्य नहीं, उनका मुँह तो कोई बन्द नहीं कर सकता वे तो हर हालत में उपहास करते हैं । इसलिए हँसी होने के झूठे भय को कल्पना में से निकाल देना चाहिए और जब विपन्न अवस्था में रहने की स्थिति आ जाय तो हँसते हुए, बिना किसी भय, संकोच झिझक एवं ग्लानि के उसे स्वीकार लेना चाहिए ।

कोई योजना निर्धारित करने के साथ-साथ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि निश्चय कार्यक्रम में विघ्न भी पड़ सकते हैं, बाधा भी आ सकती हैं, कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है । उन्नति का मार्ग खतरों का मार्ग है । जिसमें खतरों से लड़ने का साहस और संघर्ष में पड़ने की क्षमता हो उसे ही सिद्धि के पथ पर कदम बढ़ाना चाहिए । जो खतरों से डरते हैं, जिन्हें कष्ट सहने से भय लगता है, कठोर परिश्रम करना जिन्हें नहीं आता उन्हें अपने जीवन को उन्नतिशील बनाने की कल्पना नहीं करनी चाहिए । अदम्य उत्साह, अटूट साहस, अविचल धैर्य, निरन्तर परिश्रम और खतरों से लड़ने वाला पुरुषार्थी ही किसी का जीवन सफल बना सकता है । इन्हीं तत्वों की सहायता से लोग उन्नति के उच्च शिखर पर चढ़ते हैं और महापुरुष कहलाते हैं ।

उन्नति के लिए प्रयत्न और परिश्रम की आवश्यकता

उन्नति का सबसे बड़ा आधार परिश्रम अथवा पुरुषार्थ है । संसार में असंख्यों प्रकार की विभूतियाँ भरी पड़ी हैं । सुखी और समृद्ध बनाने वाले साधन हर जगह मौजूद हैं । पारस्परिक सहयोग, ज्ञान-प्राप्ति, अध्यवसाय, सद्व्यवहार, आत्मिक शक्तियों के विकास के द्वारा मनुष्य इनको प्राप्त करके मनचाही उन्नति कर सकता है । आवश्यकता केवल इस बात की है कि हम इनके लिए अपनी हार्दिक आकांक्षा और योग्यता का प्रमाण दे सकें । इन बातों को हम परिश्रम शीलता द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं ।

कहते हैं कि सिंहनी का दूध स्वर्ण के पात्र में दुहा जाता है । उद्योगी पुरुष सिंहों के यहाँ लक्ष्मी का निवास होता है । पुरुषार्थियों के गले में विजय की वरमाला पहनाई जाती है । प्रतियोगिता में जो जीतते हैं, वे पुरुष्कार पाते हैं । परीक्षा में उत्तीर्ण हुए छात्र ही प्रमाण-पत्र

प्राप्त करते हैं । प्राचीन समय में स्वयंवरों की प्रथा थी, युवतियाँ उन्हीं वरों को चुनती थीं जो उनकी दृष्टि में अधिकारी ठहरते थे । उन्नति की देवी भी स्वयंवर प्रथा की अनुगामिनी है, अधिक पुरुषार्थी ही उसके चुनाव में आते हैं । पात्रता का दूसरा नाम परिश्रम है । कहते हैं "पैसा हाथ का मैल है ।" अर्थात् हाथ को घिसने से पैसा होता है । 'पसीना की कमाई" यह शब्द नित्य की बोलचाल में प्रयुक्त होता है । इसका भावार्थ है कि कोई भी कमाई पसीना बहाने से हुआ करती है ।

परिश्रम एक उत्पादक शक्ति है, जिससे वस्तुएँ पैदा होती है । संघर्ष में से जीवन की उत्पत्ति होती है । नाड़ियों में खून दौड़ रहा हो और फेंफड़ों में वायु का आवागमन जारी हो तो समझना चाहिए कि जीवन मौजूद है । अगर खून ने दौड़ना बन्द कर दिया हो या सांस का चलना रुक गया हो तो कहा जा सकता है कि इसकी मृत्यु हो गई । यदि यह जीवन कायम रखने वाली गति मन्द या शिथिल दिखाई पड़ रही हो तो चतुर वैद्य कह देते हैं कि अब इसका जीवन दीप बुझा ही चाहता है । जो लोग परिश्रमी हैं सदा काम में जुटे रहते हैं, वे जीवित हैं, उनका जीवन जागृत है, पर जिनको काम देख कर डर लगता है, परिश्रम देखकर जिनका हंस रोता है वे मरे हुए हैं, उनकी उन्नति की आशा नहीं की जा सकती । वे जीवित मृतकों की भाँति केवल प्राण धारण किए रह सकते हैं ।

कुएँ के मुँह पर पड़े हुए पत्थरों पर रस्सी की रगड़ से निशान पड़ जाता है और परिश्रम की रगड़ से कठिन से कठिन काम पूरे हो जाते हैं, निरन्तर यदि थोड़ा-थोड़ा भी परिश्रम होता रहे तो कुछ ही समय में भारी उन्नति हो सकती है । कन-कन जोड़ने से मन इकट्ठा हो जाता है ।

महात्मा गांधी का समय बहुत ही कार्य व्यस्त रहता था । वे सदा ही कामों में डूबे रहते थे । उन्हें जरा भी फुरसत नहीं मिलती थी, तो भी उन्होंने एक-एक घण्टा नित्य का समय निकाल कर कुछ ही दिनों में भारत की करीब एक दर्जन प्रान्तीय भाषाएँ वृद्धावस्था में भली प्रकार सीख ली थीं । फुरसत न मिलने का बहाना बहुत ही झूठा बहाना है । जिस विषय में मनुष्य की दिलचस्पी हो उसके लिए वह

जरूर ही थोड़ा-बहुत समय निकाल सकता है । चौबीस घण्टों में से आराम के आठ घण्टे छोड़कर सोलह घण्टे समय बचता है । इसमें से इच्छित्त विषय का अभ्यास करने के लिए थोड़ा-सा समय निकाला जा सकता है । जो लोग फुरसत का बहाना करते हैं उनका भावार्थ वास्तव में परिश्रम से जी चुराना होता है । जो श्रम नहीं करना चाहता उसके लिए कभी फुरसत नहीं, जरा-जरा से काम जो हँसते-खेलते, चलते-फिरते हो सकते हैं, वे भी उसे पहाड़ की तरह भारी मालूम होते हैं और एक ऐसा ही छोटा काम कर लेने पर वह इतनी थकान महसूस करता है मानो कोई बड़ा भारी किला फतह करके चुका हो । ऐसे लोग थोड़ा-सा काम करने के बाद झुँझला जाते हैं, कराहते हैं, लंबे उसाँस भरते हैं, बेचैनी अनुभव करते हैं और बुड्ढों की तरह उल्टा मुँह करके पड़े रहते हैं ।

कभी शारीरिक कमजोरी के कारण मनुष्य की क्रिया शक्ति कुण्ठित हो जाती है और थोड़े से परिश्रम से थकान आ जाती है । उसकी चिकित्सा करनी उचित है । परन्तु अधिकांश व्यक्ति शारीरिक निर्बलता से नहीं, वरन् मानसिक निर्बलता से ग्रसित होते हैं, शारीरिक कमजोरी की अपेक्षा मन की कमजोरी के कारण शक्तियाँ अधिक कुण्ठित होती हैं । ज़िनका मन परिश्रम से रस लेता है, उन्हें फुरसत न मिलने की शिकायत नहीं करनी पड़ती । वे अनेक झंझटों और कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी अपने प्रिय विषय की साधना करने के लिए कोई न कोई समय निकाल ही लेते हैं और थोड़ा-सा भी समय नियमित रूप से कार्य के लिए दिया जाता रहे तो स्वल्पकाल में ही आश्चर्यजनक प्रगति दिखाई पड़ने लगती है । यदि एक घण्टा नित्य व्यायाम या तेल मालिश के लिए नियत कर लिया जाय तो एक वर्ष में शरीर की दशा कुछ से कुछ हो सकती है । यदि एक घण्टा रोज किसी दूसरी भाषा का अभ्यास किया जाय तो एक वर्ष में उस भाषा का काम चलाऊ ज्ञान भली प्रकार हो सकता है । ज्योतिष, स्वास्थ्य, गणित, समाज शास्त्र, मनोविज्ञान, धर्म आदि किसी विषय का ठीक साहित्य एक घण्टा रोज एक वर्ष तक पढ़ा जाय तो उस विषय में पाण्डित्य प्राप्त किया जा सकता है । एक घण्टे जितना तुच्छ समय साधारणतः जीवन में कुछ विशेष महत्त्व नहीं रखता । इससे

दूना–चौगुना समय यों ही आलस्य में या निरर्थक बातों में नष्ट हो जाता है। ध्यान देने पर, सतर्क दृष्टि से परीक्षण करने पर बहुत–सा समय ऐसा निकल सकता है जिसका यदि सदुपयोग किया जा सके तो बहुत अधिक काम हो सकता है। जहाँ परिश्रम में रुचि होती है, वहाँ बहुत–सा समय निकल आता है, जहाँ मेहनत को देखते ही कलेजा काँपता है वहाँ फुरसत ढूँढे नहीं मिलती। निठल्ले या जरा–सा हलका काम करने वाले भी अपने को जब 'बहुत व्यस्त' समझें तो उसे 'कामचोरी' का एक बहाना ही कहा जा सकता है।

चाहे कोई आदमी कितना ही बड़ा या अमीर क्यों न हो पर उसको भी परिश्रम करना आवश्यक है। बड़े–बड़े करोड़पति धन–कुबेर निठल्ले नहीं पड़े रहते, वरन् साधारण मजूरों की अपेक्षा अधिक काम करते हैं। यदि वे इतना काम न करें तो उनकी सम्पत्ति का दिन–दिन बढ़ते जाना रुक ही न जाय वरन् उल्टी घटोत्तरी होने लगे। लक्ष्मी उनके यहाँ निवास करती है जो उद्योगी पुरुष सिंह हैं। जो पुरुष अपनी उद्योग परायणता और परिश्रमशीलता को खो बैठता है, वह लक्ष्मी का प्रिय पात्र नहीं बन सकता, संपदाएँ उसके यहाँ ठहर नहीं सकतीं। अकर्मण्यता दरिद्रता की सहेली है। जहाँ अकर्मण्यता रहेगी वहाँ किसी न किसी प्रकार दरिद्रता जरूर पहुँच जायेगी।

प्राचीन समय में हमारे पूजनीय पूर्वज श्रम परायणता का महत्व भली प्रकार समझते थे, इसलिए उन्होंने इसे पुनीत धार्मिक कृत्यों में बहुत ऊँचा स्थान दिया है। आध्यात्मिक साधना में उसकी प्रमुख स्थापना की है। 'तपश्चर्या' यह शब्द धार्मिक जगत में बड़े आदर के साथ उच्चारण किया जाता है। 'तपस्या' शब्द हमारे हृदय में आदर एवं श्रद्धा का संचार करता है। तपस्वी व्यक्ति के लिए हमारा मस्तक सहज ही श्रद्धा से नत हो जाता है। यह तपस्या क्या है ? श्रेष्ठ, उचित एवं उन्नतिशील कार्यों के लिए परिश्रम करना और उस मार्ग में जो कष्ट आते हों उन्हें सहन करना, यही तपस्या की परिभाषा है। ऋषि–मुनियों का जीवन तपस्यामय होता था, वे तपश्चर्या की साधना में पर्याप्त समय लगाते थे। विद्या से भी अधिक, ज्ञान से भी अधिक तपस्या को महत्व दिया जाता था। क्योंकि विद्या और ज्ञान से मस्तिष्क का विकास तो होता है, पर

वह चेतना उत्पन्न नहीं होती, जिसके द्वारा उस मस्तिष्क के विकास को कार्य रूप में परिणत किया जा सके, जीवन व्यवहार में लाया जा सके । जिसे कठोर परिश्रम का अभ्यास है वह ही अपने उन्नतिशील विचारों के अनुसार आचरण कर सकता है ।

स्वभावतः ऊपर चढ़ने में अधिक परिश्रम पड़ता है । सीढ़ियों पर चढ़ कर ऊपर की मंजिल पर पहुँचने वाले एवं पर्वतों के शिखर की ऊँची यात्रा करने वाले जानते हैं कि उनके पैरों को समतल भूमि पर चढ़ने की अपेक्षा अधिक कार्य करना पड़ता है । जिनके पैर इस 'अधिक कार्य' का बोझ उठाने को तैयार न हों वे ऊँचे स्थान पर पहुँचने का आनन्द नहीं लूट सकते । ऊपर से नीचे फिसल पड़ना सरल है, दो सौ फीट ऊँची दीवाल पर से कोई व्यक्ति गिरे तो दो चार सैकिण्ड में ही बिना हाथ-पैर हिलाये उस रास्ते को पार करके जमीन पर आ गिरेगा परन्तु उतनी ऊँचाई तक चढ़ने के लिए काफी मेहनत करनी पड़ेगी । जीवन को अवनति के गड्ढे में पटक देने वाले कुविचार आसानी से क्रिया रूप में आ जाते हैं, पर ऊँचे उठाने वाले, उन्नति की ओर ले जाने वाले, मार्ग पर चलने में काफी प्रयत्न और परिश्रम करना पड़ता है, बाधाओं से काफी संघर्ष लेना पड़ता है, तब कहीं जाकर सफलता मिलती है । इसलिए ऊँचा चढ़ने की साधना का तपश्चर्या से अनन्य सम्बन्ध है । जिसमें तप करने की वृत्ति नहीं उसके लिए आत्मिक या भौतिक, भीतरी या बाहरी किसी प्रकार की उन्नति करना कठिन है ।

पुराने समय में आज की तरह बालकों को अनावश्यक लाड़-दुलार में रखकर बर्बाद नहीं किया जाता था वरन् थोड़ा-सा वयस्क होते ही गुरुओं की संरक्षता में तपस्या का कठोर जीवन बिताते हुए विद्याध्ययन करने के लिए भेज दिया जाता था । आज तो थोड़ा पैसा जिसकी अण्टी में है, वह अपने लड़कों को स्कूल पहुँचाने और वहाँ से वापस लाने के लिए घोड़ा गाड़ी भेजता है, किताबों का बस्ता लाने और पहुँचाने के लिए नौकर भेजा जाता है । इस प्रकार अपने धनीपन की पूर्ति करने के लिए बालकों को आरंभ से ही काहिल, परिश्रम से जी चुराने वाला बनाया जाता है, अन्त में वे लड़के बाप-दादों की कमाई को फूँकते हुए काहिली की जिन्दगी बिताते रहते हैं, परन्तु पहले ऐसा नहीं होता था ।

महाराज दशरथ के पास घोड़ा, गाड़ी जरूर रही होंगी, न रही हों तो भी बनबाने लायक पैसा जरूर रहा होगा, तो भी उन्होंने अपने राजकुमारों को विश्वामित्र के आश्रम में तपस्वियों की तरह जीवन बिताते हुए शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजा । करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति रखने वाले नन्दजी ने अपने बालक श्रीकृष्ण को चार सौ मील दूर उज्जैन में संदीपन ऋषि के आश्रम में विद्याध्ययन के लिए भेजा । उस समय की यह आम रिवाज थी, गरीबों से लेकर महाराजाओं तक के बालक तपस्वी जीवन की आदत डालने के लिए गुरुकुलों में जाते थे । फलस्वरूप हनुमान, जामवन्त, भीम, अर्जुन, धृतराष्ट्र, भीष्म, कर्ण जैसे योद्धाओं से भारत भूमि पटी पड़ी थी । आज घोड़ा गाड़ी में बैठकर स्कूल को जाने वाले बबुए, जिनको माँ–बाप सत्यानाशी दुलार की अति दिखाकर लुञ्ज–पुञ्ज बना देते हैं, बड़े होकर जुल्फें काढ़ने, फैशन बनाने या सिनेमा–थियेटरों के चक्कर काटने के अतिरिक्त कोई पुरुषार्थ पूर्ण प्रगति नहीं कर पाते । प्राचीन समय में ट्यूटर नौकर रख कर बच्चों को, घर पर पढ़वाने लायक पैसे वाले लोग भी थे परन्तु वे जानते थे कि वह विद्या जो इतने नाजुकपन से सीखी गई हो सिवाय क्लर्की की नौकरी दिलाने के और किसी काम नहीं आ सकती । इसलिए बालकों को भावी जीवन में कठोर, कर्मठ, पुरुषार्थी बनाने के लिए आरम्भ से ही विद्याध्ययन की भाँति तपश्चर्या भी सिखाई जाती थी । जिन बालकों का तपस्यामय वातावरण में विकास होता है, वे ही बड़े होकर महापुरुषों के रूप में, सर्वतोमुखी उन्नति करके नर–रत्नों के रूप में संसार के समक्ष आकर जगमगाते हैं ।

विश्व का कोई कार्य ऐसा नहीं जिसे तपश्चर्या द्वारा प्राप्त न किया जा सकता हो । प्रचण्ड भक्ति द्वारा भक्त लोग तीन लोक के नाथ नारायण को अपने वश में कर लेते हैं, देवता और भूत–पिशाचों पर काबू कर लेते हैं, अदृश्य अन्तरिक्ष में अनोखे तत्वों को आकर्षित कर ऋद्धि–सिद्धियों के स्वामी बन जाते हैं । तप में मूक को वाचाल बना देने की और पंगु को गिरिवर पर चढ़ा देने की शक्ति है । निर्जीव वस्तुओं के संघर्षण से अग्नि की चिन्गारी उत्पन्न होती है जो अवसर पाकर जाज्वल्यमान दावानल का रूप धारण कर लेती है । चैतन्य आत्मा का सजीव पिण्ड शरीर जब घिसा जाता है, परिश्रम के पाषाड़ पर

रगड़ा जाता है तो उसमें से निर्जीव विद्युत से असंख्य गुनी शक्ति वाली प्राण-विद्युत उत्पन्न होती है, जिसके द्वारा कठिन से कठिन कार्य पूरे हो जाते हैं। भौतिक विज्ञान के जानकारों को मालूम है कि प्रकृति का एक क्षुद्र परमाणु जब फटता है तो वह अपनी गर्मी से इस्पात की भारी गुम्बदों को गला कर पानी कर सकता है। इसी प्रकार अध्यात्म विज्ञान के वेत्ता जानते हैं कि चैतन्य आत्मा का सतेज परमाणु मनुष्य जब अपने पूरे साहस के साथ प्रस्फुटित होता है तो वज्र-सी दुर्भेद्य कठिनाइयों को पीस कर चूर-चूर कर देता है।

परिश्रम यदि विवेक और व्यवस्था के साथ उचित दिशा में किया जाय तो उसका परिणाम आश्चर्यजनक होता है। संसार में जो भी महानतम कार्य हुए हैं वे मनुष्य के परिश्रम की अद्भुत शक्ति की गवाही दे रहे हैं। शारीरिक और बौद्धिक परिश्रम दोनों ही अपने-अपने स्थान पर महत्वपूर्ण हैं। दोनों के सम्मिलन से एक पूर्ण परिश्रम का निर्माण होता है। जैसे दो पहियों के बिना रथ अपूर्ण है, जैसे स्त्री-पुरुष बिना गृहस्थ अपूर्ण हैं, वैसे ही अकेला शारीरिक या अकेला मानसिक श्रम अपूर्ण है। दोनों हाथों के सहयोग से काम करने की क्रियाएँ होती हैं, दोनों पैरों से चलने का कार्य ठीक प्रकार होता है उसी प्रकार शारीरिक श्रम और मानसिक श्रम दोनों प्रकार के श्रमों की क्षमता ही जीवन विकास में समुचित सहायता प्रदान करती है। जिन्हें केवल मानसिक श्रम में रुचि है और शारीरिक श्रम को तुच्छता की दृष्टि से देखते हैं, वे भूल करते हैं। इसी प्रकार जो शरीर की मेहनत से ही संतुष्ट हैं मानसिक श्रम पर ध्यान नहीं देते, वे भी गलत रास्ते पर हैं। दिमागी काम तक ही अपनी रुचि सीमित रखने वाले स्वास्थ्य को खो बैठते हैं, देह में कमजोरी और बीमारी का प्रवेश हो जाने पर संसार की सुखानुभूतियों से हाथ धोना पड़ता है। इसी प्रकार जिनका क्षेत्र देह की मेहनत मजूरी तक ही सीमित है, वे बौद्धिक विकास से वंचित रह जाते हैं। उन्हें अज्ञान का, मूर्खता का, अविवेक का दुःख उठाना पड़ता है, जो शारीरिक कमजोरी या बीमार से कम दुःखदायी नहीं है।

श्रम करने में वैसी ही रुचि होनी चाहिए जैसी खेल खेलने में होती है। मेहनत को मार समझना, थकान का प्रमुख कारण है।

विवाह–शादी की खुशी के दिनों में लोग दिन–रात काम में लगे रहते हैं, पर ऐसा कुछ नहीं मालूम पड़ता कि उनके सिर पर पहाड़ रक्खा हुआ हो । गेंद खेलने में खिलाड़ियों को काफी भाग–दौड़ करनी पड़ती है, पर उसकी थकान नहीं आती । कारण यह है कि खेलने में, शादी–ब्याह की धूम–धाम में मन एक प्रकार का रस लेता रहता है । इसी प्रकार अन्य कामों में भी यदि अपनी रुचि का ऐसा ही समावेश कर दिया जाय तो थकान न आवेगी और न जी ऊबेगा । काम को कर्तव्य समझकर करना चाहिए । काम करना स्वयं एक आनन्द है, उस आनन्द के रसास्वादन की अपनी आदत डालनी चाहिए । इच्छित परिणाम की आशा–निराशा में जो लोग उत्साहित–अनुत्साहित होते रहते हैं उनकी क्रिया पद्धति बिगड़ जाती है । कई बार वे निराशा के कारण नियत काम को छोड़ बैठते हैं और कई बार सफलता की खुशी के मारे हाथ–पाँव फूल जाते हैं । अध्यात्म शास्त्र के गीता आदि ग्रन्थों में आसक्ति छोड़ कर कर्तव्य भाव से कार्य करने के जिस कर्म योग का उपदेश दिया है, वह 'कर्म' को कर्तव्य समझकर परिश्रम में ही रस लेने की ही शिक्षा है । इस पद्धति से काम करने वाले का आनन्द और उत्साह कभी मन्द नहीं पड़ता । न कभी थकान आती है और न जी ऊबता है । काम को खेल समझते हुए उसे अपना अभ्यास बढ़ाने की एक शिक्षा, एक माध्यम मानते हुए करने की आदत बहुत उपयोगी है । जैसे चित्रकला का विद्यार्थी अपनी सुरुचि को एकत्र करके अपने चित्र को अधिकाधिक सुन्दर बनाने के लिए एकाग्रतापूर्वक प्रयत्न करता है और अच्छा चित्र न बनने पर भी अपने प्रयत्न काल के 'अभ्यास–रस' से बहुत आनन्द उपलब्ध करता है और बार–बार नए–नए चित्र बनाते–बनाते अपनी योग्यता बढ़ाता हुआ एक दिन कुशल चित्रकार बन जाता है, उसी प्रकार हमें हर काम को एक चित्र समझ कर अपने आत्मानन्द के लिए उसे अधिक से अधिक सुन्दर बनाने का रुचिपूर्वक प्रयत्न करना चाहिए । जब ये साधना आदत के रूप में आ जाती है तो मनुष्य सच्चा कर्मयोगी बन जाता है और प्रति क्षण उस आनन्द में सरावोर रहता है जो कर्मयोगी को प्राप्त हुआ करता है । परिश्रमी व्यक्ति हर घड़ी सफलता और उन्नति के आनन्द से ऊँचे दर्जे के रस

का आस्वादन करता रहता है ।

परिश्रम में अनेकों लाभों का भण्डार भरा हुआ है । निरोगता, बलिष्ठता, दीर्घजीवन, प्रफुल्लता, गाढ़ निद्रा, चैतन्यता, स्फूर्ति, उत्साह, साहस, उत्पादन, बुद्धि, वृद्धि, आत्म-विश्वास आदि के अनेक आनन्ददायक तत्वों की बढ़ोत्तरी होती है । कठिनाइयाँ सरल हो जाती हैं और दुर्लभता सुलभ बन जाती है । परिश्रम की सीढ़ियों पर पैर घरने वाला मनुष्य लगातार आगे बढ़ता जाता है और एक दिन वह अभिवृद्धि इतनी अधिक हो जाती हैं कि उसमें और उसके निठल्ले साथियों में जमीन आसमान का अन्तर पड़ जाता है । बड़ों का बड़प्पन महान पुरुषों की महानता, विद्वानों की विद्वत्ता एवं संपत्तिशालियों की सम्पदा और कुछ नहीं केवल उनके परिश्रम का ही दूसरा रूप है । श्रम स्वर्ण का एक ढेला है उसे जिस साँचे में ढाल दीजिए, वैसा ही आभूषण बन जायगा । जिस भी दिशा में मनुष्य मेहनत करता है उसी दिशा में वह उन्नति कर सकता है ।

आप किसी भी प्रकार की उन्नति के इच्छुक हों आकांक्षा, कष्ट सहन, परिश्रमशीलता के बिना सफलता के दर्शन नहीं कर सकते । ये तीनों गुण स्वभावतः तो थोड़े ही लोगों में पाये जाते हैं, पर अभ्यास द्वारा सभी उनको प्राप्त कर सकते हैं । इसलिए यदि आप अपने जीवन को वास्तव में सफल और सार्थक बनाना चाहते हैं, उन्नति के इस मूल-मंत्र का ध्यान रखिए । इनके द्वारा आप प्रत्येक विषय में उन्नति कर सकने में समर्थ हो सकेंगे ।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)